मास्टरबा : विडंबनाओं का यथार्थ

पुस्तक : मास्टरबा
लेखक : कुमार विक्रमादित्य
प्रकाशक : अंजुमन प्रकाशन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
पृष्ठ : 191
मूल्य : 160

मुक्तेश्वर मुकेश
समीक्षक

शिक्षा जो अब मौलिक अधिकार में शामिल है, निहायत जरूरी, एक सामान्य इंसान को विशिष्ट बनाने के लिए। बिना शिक्षा के इंसान उस दंतहीन मांसाहारी पशु के समान है जो चाहकर भी शिकार नहीं कर पाता है। आप उसे शिक्षा देने वाले की विशिष्टता का सहज अंदाजा लगा सकते हैं कि कैसे वह दूधिया दांत को तोड़ते, फिर उगाते और उसमें धार बनाते हें कि एक दिन वह अपने पैर पर खड़ा होगा और अपना शिकार खुद करेगा। यह उपन्यास है शिक्षा के उस परिपेक्ष्य का जिसमें शिक्षा के सम्पूर्ण कालक्रम को सुन्दर तरीके से दर्शाया गया है कि कैसे शिष्यों के जीवन में प्रकाश लाने वाले गुरु जी, शिक्षक, मास्टर और अंततः मास्टरबा बन गए। कौन इसके लिए जिम्मेवार ? समाज, सरकार स्वयं शिक्षक या छात्र।

सच ही किसी ने कहा है कि अगर आपको किसी तंत्र को अच्छे से जानना है तो आपको उसमें डूबना पड़ेगा। लेखक ने खुद को डूबकर इस उपन्यास में विद्यालय के गुरु जी, फिर "शिक्षक" तत्पश्चात "मास्टर" फिर मास्टरबा के क्रमबद्ध नामकरण, समाज में उनकी उपेक्षा और समाज की अपेक्षा पर आधारित है; को बताया है जो विद्यालय के यथार्थ परिदृश्य का उत्कृष्ट प्रतिबिम्ब है।

उपन्यास एक शिशु छात्र की जिज्ञासा से शुरू होता है। धीरे धीरे इसके घटनाक्रम आगे बढ़ते हैं जिसमें पठन-पाठन के माहौल, आपसी प्रतिस्पर्द्धा, प्रधान शिक्षक के व्यवहार, समाज में मास्टर की प्रतिष्ठा आदि अनेकानेक पहलुओं को वार्तालाप के माध्यम से चित्रित किया गया है। नियोजित शिक्षक हो या नवका शिक्षक सभी में पढ़ाने के गुण होते हैं।

कुछ शिक्षक तो विलक्षण प्रतिभा के होते हैं फिर भी सामाजिक स्तर पर उनके मान-अपमान बहस का मुद्दा बनता रहता है। योग्यता और कौशल के वनिस्पत पैसे से शिक्षक के काबिलियत को आँका जाता है।

इस उपन्यास के एक पात्र छात्र आनंद जिसने "मास्टर क्या होता है" प्रश्न पूछकर विनय बाबू से मार खायी थी उसके मन में विज्ञान शिक्षक कुंदन बाबू और संस्कृत शिक्षक रघुबंश बाबू के कर्तव्यनिष्ठता और शिक्षा के कारण आदरभाव असीमित रूप से प्रस्फुटित हो जाता है। आपसी ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिस्पर्द्धा समकक्ष नियोजित शिक्षकों के बीच भी उपन्यास में मिलता है। समकक्षों और खासकर उच्च वेतनभोगी के बीच बैर पनपना मानव मनोवृत्तियाँ है जिसे इस उपन्यास में जिस तरीके से दर्शाया गया है वह एक नायाब उदाहरण है और इसलिए तो गुरूजी मास्टरबा हो जाते हैं।

विज्ञान शिक्षक कुंदन और संस्कृत शिक्षक रघुबंश बाबू के बीच आपसी समझ एवं समन्वय का वर्णन कर विज्ञान और भाषा विषय के बीच बढ़िया तालमेल इस पुस्तक में दिखाया गया है। प्रतियोगी परीक्षा से बने शिक्षक अथवा "सर्टिफिकेट लाओ नौकरी पाओ" से बहाल नियोजित शिक्षक दोनों के किरानीगिरी की मानसिकता और गैर शैक्षणिक कार्यों में रुचि रखनेवाले शिक्षकों का विद्यालयों से पलायन कर प्रतिनियोजन की जुगाड़ और सरकारी कार्यालयों की संचिका पर बैठ जाने की प्रक्रिया का बेजोड़ वर्णन इस पुस्तक में देखने को मिलता है। यह प्रतिनियोजित शिक्षक विद्यालयों में शैक्षणिक कार्य में लगे अपने ही साथियों पर किस कदर धौंस जमाते हैं इसका प्रदर्शन "पाठक जी" नामक शिक्षक के माध्यम से यहाँ किया गया है जो यथार्थ बोध करता है।

अनियोजित यानी बेरोजगार को नियोजन यानी रोजगार देने को नियोजित कहा जाता है। नियोजित शिक्षक अर्थात प्रशिक्षित या अप्रशिक्षित को एक नियत वेतन पर बहाल करना होता है जो वर्तमान समय में सभी राज्यों में हो रहा है। शिक्षक कोई हो वास्तव में उनका क्या दोष ? दोष तो नियुक्ति प्रक्रिया का है। चूंकि यह पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था के तहत मुखिया, प्रमुख, और जिला परिषद् अध्यक्ष के नियुक्ति बोर्ड द्वारा बहाल किये जाते हैं जिनका आधार अंक होता है न कि प्रतियोगिता परीक्षा। परीक्षा में अंक कैसे आते हैं यह बात किसी से छुपी नहीं है, इस बात को लेखक ने बहुत सहज तरीके से दर्शाने का प्रयास किया है। कुंदन और रघुबंश बाबू जैसे योग्य और उच्च योग्यताधारी शिक्षक और नकली व फर्जी अंक पत्रों पे बहाल शिक्षक दोनों का नियोजन इन्ही कमेटियों के द्वारा की जाती है। इसलिए पढ़ाने और नहीं पढ़ानेवाले एक ही पद के शिक्षकों के बीच बराबर विवाद होना रोजमर्रा का दृश्य विद्यालयों में दिख जाता है। शिक्षक दिवस जैसे पवित्र दिन पर आनंद और अन्य छात्रों के समक्ष ही शिक्षकों की मारामारी इसी का परिणाम था। फर्जी मास्टर की परिभाषा भी उपन्यास में बखूबी गढ़ा गया है।

लेखक ने संतोष सर के बोलने, भोलापन और हज़िरजवाबी अंदाज से ना सिर्फ छात्र बल्कि शिक्षकगण एवं पदाधिकारी भी खूब मज़ा लेते हैं। इस उपन्यास में संतोष सर द्वारा मनोरंजन का भरपूर तत्त्व परोसा गया है। प्रधान शिक्षक जो नियमित है, अच्छी पगार पाते हैं फिर भी विविध रूपों में कमाने का स्रोत ढूँढा जाना और निम्न स्तर तक चला जाना शिक्षक की नैतिकता के पतन का द्योतक है।

बस में नवका शिक्षक, नियोजित शिक्षक के अस्तित्व पर जैसे ही कोई चर्चा होती है, सबके सब एक साथ होकर मास्टरबा को कोसना शरू कर देते हैं जिसकी जड़ नियोजन प्रक्रिया में जमी हुई है। हालांकि यह भी यहाँ ध्यान देने योग्य है कि संतोष बाबू अपनी शैक्षिक मजबूरी को सबके सामने रखने में नहीं हिचकते हैं वहीं मीनू मैडम, श्रुति मैडम, प्रभाकर जैसे शिक्षक पढ़ाने से कतराते हैं। प्रधान शिक्षक के द्वारा कक्षा में नहीं पढ़ाने का फायदा ये कामचोर शिक्षक खूब उठाते हैं। संतोष बाबू द्वारा एक निरिक्षी पदाधिकारी को प्रधान शिक्षक समझकर

"पैर भारी" या "भारी-पैर" की परिभाषा देते हुए जो कुछ बताया गया वह भोलेपन में ही सही लेकिन विद्यालय के गैर-शैक्षणिक वातावरण का कच्चा चिट्ठा है।

कुछ शब्दों का प्रयोग जैसे पिपियाना, ऑनर्स मजबूत, फरियाबाजी, तीन जिस्ता आदि शब्द आपको मुस्कुराने के लिए वाध्य करता है। हाँ पदाधिकारी अर्थात साहब और सर अर्थात शिक्षक का घालमेल भी दिख जाता है । सामान्य पाठक को समझने में परेशानी हो सकती क्योंकि वे सर और साहब को एक ही मानते हैं। खैर यहाँ साहब हैं कार्यक्रम पदाधिकारी और सर हैं शिक्षक।

एक प्रसंग में कार्यक्रम पदाधिकारी कार्यालय के करतूतों और दोहन तथा राशि की बंदरबांट का खुलकर बखान श्रुति मैडम एवं संतोष जी द्वारा किया गया है। एम् डी एम् मतलब मध्याह्न भोजन की राशि और प्राप्त खाद्यान की लूट-खसोट की चर्चा पुस्तक में की गयी है जिसमें पदाधिकारी, शिक्षक, पत्रकार और शिक्षा समिति सभी हिस्सेदार हैं। प्रायोगिक परीक्षाओं में अंक देने का राज भी खोला गया है। प्रायोगिक परीक्षा में कैसे अंक प्रदान किये जाते हैं, इसका पूरा हिसाब किताब प्रधान शिक्षक से लेकर चपरासी तक को उपन्यास में जगह दी गई है । प्रधान शिक्षक अंकों के बदले उगाही किये गए रकम को आपस में नहीं बांटते जबकि मुखबिलास मॉडल को मीनू मैडम ने सराहना की है जो "सबका पाप सबका साथ" पर आधारित था। कुंदन और रघुबंश बाबू ईमानदार शिक्षक हैं उन्हें किसी तरह का प्रलोभन डिगा नहीं सका लेकिन वैसे शिक्षक जिन्हें लालच था वो इन दोनों से खफा हो गए । हद तो यह हो जाती है जब वे सेवानिवृति के अवसर पर विदाई खर्च हेतु रखे रूपये भी रख लेते हैं और हिसाब बराबर के देते हैं।

निक्क में शिक्षकों के बारे में छात्रों द्वारा बोर्ड पर लिख दिया जाता है– तीन शिक्षक, एक मैडम और तीन गदही इस विद्यालय में है, यह शैक्षणिक गिरावट की पराकाष्ठा है । कुंदन जी का सामना अपने विद्यालय के बेईमान प्रधान शिक्षक से तो रोज होता है पर जब इंटर और मैट्रिक परीक्षा के वीक्षक बनकर दूसरे विद्यालय में जाते हैं तो वहाँ के प्रधान शिक्षक सह केन्द्राधीक्षक भी एक खुर्राट बेईमान के रूप में सामने मिलते हैं जिनकी हरकत बेमिशाल थी क्योंकि वे नाश्ते के पैसे भी काटकर जेब में रख लेते हैं।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में विधायक/ आर. डी. डी. ई/ नियोजित शिक्षकों की वेतनादि की न्यायिक लड़ाई को समेटने का प्रयास किया गया है परन्तु व्यवस्था से हारकर न्यूनतम वेतन पर अपने भविष्य की असुरक्षा पर जीवन की बलि चढाने वाले नियोजित शिक्षकों में कुछ तो सेवा निवृत्त हो गए और उन्हें कुछ भी नहीं हासिल हुआ । सरकार ने ऐसा ताना बाना बुना कि न्यायलय से भी उन्हें निराशा ही हाथ लगी । उन अवकाश प्राप्त शिक्षक के सामने एकतरफ भूखमरी तो होगी ही दूसरी तरफ पारिवारिक बोझ जो उन्हें जल्दी ही समाज से उस एकांत के तरफ ले जाएगा जहां वह अपना मुंह छुपा सके।एक मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करके लेखक ने बहुत बड़ी बात को सामने लाने का प्रयास किया है।

उपन्यास के अंत में जब कुंदन सर प्रधान शिक्षक पद पर अन्य विद्यालय में पदस्थापित होते हैं तो घटनाएं द्रुत गति से बदलती है। विद्यालय के शैक्षणिक माहौल को सँभालने, ईमानदारी से काम करने की सजा पदाधिकारी और अभिभावकों के धरना, प्रदर्शन और निलंबन के रूप में मिलता है। "मास्टरबा" संबोधन को शब्दवाणों से बींधना पड़ता है । कर्मठता और योग्यता सभी नाकाफी होते हैं शिक्षातंत्र और छात्रवृत्ति भोगी जनसमुदाय के समक्ष जो पढ़ाई से ज्यादा, लाभ मिल रहे योजनाओं को समझते हैं। अचानक कुंदन सर के सामने आनंद नामक वही आज्ञाकारी छात्र जो प्रधान सचिव के रूप में प्रकट होते हैं और तंत्र के सभी घटक उनके अनुकूल हो जाते हैं। अब सारे गिले शिकवे गौण हो जाते हैं और सभी कर्मचारी और पदाधिकारी उनका गुणगान करने लगते हैं जो बताता है कि अफसरशाही तंत्र पर

कितना हावी है । समय तुरंत करवट लेता है आनंद ने कुंदन सर को पुनः प्रतिष्ठा दिलाने में जो भी किया वह बताता है कि अभी भी शिक्षकों के लिए कुछ आश बची है, पर शिक्षक को भी कुंदन सर बनना होगा और छात्र को भी आनंद जैसे जिज्ञासु और समर्पण दिखाना होगा ।

कुमार विक्रमादित्य ने मास्टर की अस्मिता और आदर्श को ऊँचा उठाने का भरसक प्रयास किया है, परन्तु उनके द्वारा शिक्षकों की प्रतिस्पर्द्धा, बेईमानी, शिक्षकोवृत्ति से पलायन पर सत्यता से आघात किया गया है । उपन्यासकार ने अपने आत्मपरिचय में स्वयं को शिक्षक बताया है इसलिए "मास्टरबा" के विभिन्न स्वरुप को अतिनिकट तक अनुभव किया है । भोगा हुआ यथार्थ के कारण जिस दंश को उसने झेला है। इसलिए यह उपन्यास सही उद्देश्य की और बढ़ता चला गया है । मास्टरबा उपन्यास में कुछ प्रसंगों को मनोरंजक बनाने का प्रयास भी है, परन्तु कुछ चीजें खटकती भी हैं । जैसे आनंद के फौजी पिता द्वारा अपने साथियों के साथ पीने/ पिलाने चखना और पैग उपन्यास के कथा के नजरिये से प्रसंगहीन है क्योंकि कुछ राज्यों में शराबबंदी कानून लागू है । साथ ही प्रधान शिक्षक और उनके सहयोगी शिक्षकों के बीच प्रधान के क्रियाकलाप पर कई बार गरमागरम वाद विवाद और मारपीट की नौबत का आना घटना की पुनरावृत्ति है जो उपन्यास के प्रवाह को रोकने का प्रयास करता है । इन बातों को अगर छोड़ दिया जाय तो उपन्यास पठनीय है और शिक्षा के कई आयामों को समेटता है जहां समाज के सभी घटक और सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है वरन शिक्षक संवर्ग इस उपन्यास को कहाँ तक समेट पाता है यह तो समय बातएगा ।

आशा है लेखक की कलम सतत चलती रहे और कई अन्य कथानक पर भी पाठक का प्यार इन्हें मिलता रहेगा । कुमार विक्रमादित्य ने कम उम्र में अपनी लेखनी के माध्यम से अपनी लेखकीय क्षमता को सबके सामने रखा है जो एक सराहनीय प्रयास है । **रव**